ISSN: 2320-3714
September 2019

बाल श्रमिकों की सामाजिक पृष्ठभूमि

Rachna Rajawat
Research Scholar Management
Shikohabad University, UP

सार

किसी भी देश का भविष्य वहाँ के बच्चों पर निर्भर करता है। बच्चे देश के भावी कर्णधार माने जाते है। परन्तु जिस उम्र के बच्चों को पारिवारिक दायित्वों की चिन्ता से मुक्त एक बेफिक्र बचपन बिताना चाहिए, उसी उम्र के लाखों बच्चे किताबों और खिलौनों से दूर विभिन्न उद्योगों में काम कर बचपन में ही युवा होने की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। इनमें से कुछ उद्योग तो ऐसे है जिनमें काम करने वाले अधिकांश बच्चे विभिन्न रोगों के शिकार हो जाते है।

पिछले पाँच दशकों के निरन्तर योजना, कल्याणकारी कार्यक्रमों, विधि–निर्माण और प्रशासनिक कार्य के उपरान्त भी भारत में अधिकांश बच्चे दुःख और कष्ट में रह रहे है। अधिकांश परिवारों में माता–पिता उनकी उपेक्षा करते है, देखभाल करने वाले उन्हें मारते पीटते है, और मालिक उनके साथ लैंगिक दुर्व्यवहार करते है। यद्यपि बच्चों की यह भावनात्मक, शारीरिक, लैंगिक दुर्व्यवहार की समस्या बढ़ रही है, फिर भी अपने देश में इसने समाजशास्त्रियों और मनोचिकित्सकों का ध्यान पिछले आठ दस वर्षों से ही आकर्षित किया है। जनता और सरकार ने अभी भी इसको गम्भीर समस्या नहीं माना है। जन–आक्रोश एवं व्यावसायिक चिन्ता की रचनात्मक एवं वास्तविक कार्य में परिणति होना अभी बाकी है।

ISSN: 2320-3714
September 2019

बाल मजदूर

14 वर्ष या उससे कम आयु में किसी उद्योग, कृषि या व्यवसाय में मानसिक एवं शारीरिक श्रम करने वाले बच्चे बाल श्रमिक कहलाते है। इनमें अधिकतर 5 से 14 वर्ष की आयु के ही होते है और देश के लगभग 90 प्रतिशत बाल श्रमिक आन्ध प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक तमिलनाडु उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में काम करते है। अधिकांश बाल श्रमिक गाँवों में कृषि और उससे जुड़े कामों तथा पशुपालन, मछली पालन, वृक्षारोपण, वनरोपण तथा कृषि–आश्रित कुटीर उद्योगों में लगे हुए है। महानगरों में यह बाल श्रमिक ज्यादातर घरो, दुकानों, होटलो, ढाबों और छोटी बड़ी इकाइयों में काम कर रहे है। इसके अलावा बहुत से बच्चे बूट पालिश, अखबार बेचने, कचरा बीनने, रिक्शा चलाने, फेरी लगाने तथ भीख माँगने और भवन निर्माण, सड़क निर्माण ईट के भट्टों में अपना बचपन बेचकर अपने और अपने परिवार के लिए रोटी कमा रहे है। इन कामों में लगे ज्यादातर बच्चे गरीब बेचकर अपने और अपने परिवार के लिए रोटी कमा रहे है। इन कामों में लगे ज्यादातर बच्चे गरीब परिवारों में से आते है। पढ़ने–लिखने की आयु से ही ये बच्चे मेहनत महदूरी करने के लिए मजबूर हो जाते है। इसका एक बड़ा कारण छोटी उम्र में विवाह, पारिवारिक तनाव, दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली तथ बुरी संगत आदि है। पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ भी बाल श्रम का कारण बनती है। दरअसल बाल श्रम को बढ़ावा देने में उद्योगतियों, परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका है जो कम मजदूरी देकर अधिक काम लेने तथा मनमाना शोषण करने के विचार से बाल श्रमिकों को अपने यहाँ काम पर रखते है।

ळमारे यहाँ किसी भी उद्योग में जो बच्चे काम कर रहे है उन्हें यदि सिलसिलेवार देखा जाए तो रोंगटे खड़े हो जाते है। खुर्जा के करोड़ो रूपये के मिट्टी उद्योग में बाल श्रमिक उठाई और रखाई के नाम से मशहूर हो गए हैत तो ढाबे वाले छोटू, रामू के नाम से । शीशा उद्योग के बटू है तो लोहे वाले चेले। उठाई यानि बर्तनों को उठाकर मशीनों तक ले जाना और रखाई यानि मशीन से निकले बर्तनों को सुखाने के लिए धूप मे रखना। इस काम को करने वाले बाल श्रमिकों को पांथीवालें कहा जाता है। और हर पांथीवाला एक दिन में 10 किलोग्राम वजन

उठाकर मशीन और धूप के बीच करीब एक हजार बार चक्कर लगाता है। लकिन बेशक इन बाल श्रमिकों के कंधों पर हमारे विकास के सूचक उद्योग भी टिके हुए है लेकिन उनकी वास्तविक हालत और दर्द का किसी से कोई वास्ता नहीं। धूप मे ंचक्कर लगाने हुए पसीने से तर उनका शरीर कॉपने लगता है और व बेहोश होकर गिर पड़ते हैं। लेकिन वे फिर भी सिरेमिक्स पॉटरी को चमकाते रहते है। इसी तरह सौ वर्षो से भी पुराने अलीगढ़ के ताला उद्योग में दस हजार से भी अधिक बाल श्रमिक है जहाँ उनसे हैंडप्रेस बिफिंग मशीन पर पॉलिशिंग, इलैक्ट्रोप्लेटिंग, स्प्रे पेंटिंग और एसेंबलिंग पैकिंग जैसे काम करवाए जाते हैं। हैंडप्रेसिंग में तो इन्हें चौदह घण्टों तक लगातार काम करना पड़ता है। कई बार इस तरह का काम करते हुए भयंकर दुर्घटनाओं का शिकार भी हो जाते है। मंदसौर का स्लेट उद्योग एक ऐसा उद्योग है जहाँ ये बच्चे खदानों में काम करते है। वहाँ से जो पत्थर निकलते हैं उन्हें तराशने के लिए मशीनों तक ले जाते है। रगड़ाइ–सफाई के काम करते–करते उनके हाथों की अँगुलियाँ बुरी तरह कट जाती है। इतना ही नहीं पत्थर की गर्द और धूल से उन्ही के मासूस हाथों से पनप रहे हैं। आगरे में फिरषेजाबाद का कॉच उद्योग भी एक ऐसा ही उद्योग है जहाँ भारत की 99 प्रतिशत काँच की चूड़ियाँ बनती है। जहाँ ये बच्चे एकदम विपरीत स्थितियों में काम करते है।

बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि

मानव अनेकानेक आवश्यकताओं से युक्त एक प्राणी है। जीवन– निर्वाह से लिए किसी–न–किसी प्रकार का उद्यम करना उसके लिए अनिवार्य है। निष्क्रिय मानव के लिए जीवित रहना सम्भव नहीं है, इसलिए जीवन–निर्वाह की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए किसी–न–किसी प्रकार का उत्पादक कार्य या उपक्रम की व्यवस्था सभी समाजों में होती है, चाहे वह आदिम हो, विकसित हो, लघु समुदाय या वृहद् समुदाय हो, सभी में पाई जाती है। इस सन्दर्भ में यहाँ पार महत्वपूर्ण यह है कि समय के साथ मानव की आवश्यकताएँ,

जनसंख्या में वृद्धि, साधनों की कमी आदि समस्याएँ बढ़ती गई। सरल समाजों में आज भी व्यक्ति प्रकृति से सीधे अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण कर लेते हैं, जबकि औद्योगीक समाजों में बहुत कम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव प्रकृति पर निर्भर करता है, औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया में एक ओर तो कृषि और लघु उद्योगों का पतन हुआ है, वहीं दूसरी ओर वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी के विकास के कारण ऐसे साधन आविष्कृत हुए, जिन्होनें मानव को भौतिकवादी और विलासी बना दिया। कृषि और गृह उद्योगों ने उत्पादन कार्य के लिए मानवीय श्रम की अनिवार्यता को कम कर दिया।परिणामस्वरूप नगरा में भी बेरोजगारी फैलने लगी और इसका प्रतिकूल प्रभाव जीवन स्तर पर पड़ना स्वाभाविका अर्जित करने लगीं और अब बड़े पैमाने पर बालक भी अर्थोपार्जन का कार्य कर रहे हैं। उपर्युक्त प्रक्रिया में समाज तीन वर्गों – उच्च, मध्यम और निम्न में विभाजित हो गया। इस वर्ग विभाजन में निम्न वर्ग अपनी निरन्तर आर्थिक स्थिति के कारण परिवार को ऊँचा उठाने हेतु बालकों को अर्थोपार्जन के कार्य में नियोजित करने लगा। इस प्रकार प्रौद्योगिकी और आर्थिक भौतिक विकास, आर्थिक और जीवन स्तर तथा निर्धनता और बाल श्रम परस्पर सम्बन्धित कारक बन गए। इस अध्याय में बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

लिंग एवं आयु

बच्चे का लिंग एक निश्चित एवं स्पष्अतया देखा जाने वाला जैवकीय तथ्य है जो जन्म से प्राप्त होता है तथा पूरे जन्म भर रहता है। इसी के आधार पर व्यक्तियों को विभाजित करने की सार्वभौमक द्वैतता विकसित हुई तथा उन्हें पुरूषों तथा स्त्रियों में विभाजित किया जाने लगा। यद्यपि यह जन्म द्वारा प्राप्त लक्षण है यथापि इसमें सामाजिक सीख की भी महत्वपूर्ण होती है। इसीलिए हेन्सलिन (1980) जैसे विद्वानों ने कहा है तथापि इसमें सामाजिक हस्तान्तरण का एक भाग है। जैवकीय कारक नहीं अपितु ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांसकृतिक कारक विभिन्न लिंगों में असमान एवं संस्तरणात्मक सम्बन्धों के लिए उत्तरदायी रहे हैं (पाण्डे, 1989)। यद्यपि बालिका श्रम बाल श्रम से जोखिम भरा है तथापि नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं ने निर्धनता को प्रोत्साहन देकर अनेक परिवारों को अपने बच्चों द्वारा बाल श्रम के लिए बाध्य कर दिया हैं।

लिंग की तरह आयु भी एक निश्चित एवं स्पष्टता दृष्टिगोचर होने वाला शारीरिक तथ्य है। यह भी अनेक प्रकार के सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों से जुड़ा रहता है। विभिन्न आयु समुहों के लोगों से भिन्न प्रतिमानों के अनुपालन की आशा की जाती है। लिंग के विपरीत आयु एक परिवर्तनीय तथ्य है तथा है तथा इसके आधार पर प्रस्थिति का आरोपण होता है।

1961, 1971 और 1981 की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार कुल कामकाजी बच्चे खतरनाक उद्योगों में काम करते हैं उनकी संख्या क्रमशः 3.08 लाखख 3.74 लाख और 6.71 लााख थी। वर्तमान में करीब 20 लाख बात श्रमिक खतरनाक उद्योगों में काम करते है। विभिन्न खतरनाक उद्योगों में माम करने वाले श्रमिकों के परिमाण के सम्बन्ध में राष्ट्रीय श्रम संस्थान के आँकड़े इस ओर इंगित करते है कि मिर्जापुर, मदोही उत्तर प्रदेश के कालीन उद्योगों में 50 हजार, शिवकाशी तमिलानाडु के दियासलाई और आतिशबाजी उद्योग में 50 हजार, जयपुर राजस्थान के रत्न पॉलि उद्योग में 13 हजार, अलीगढ़ के ताला उद्योग में 10 हजार, मुरादाबाद के पीतल उद्योग में 45 हजार,खुर्जा के चीनी मिट्टी के उद्योग में 50 हजार, सम्बलपुर के बीड़ी उद्योग में 54 हजार, लखनऊ के जरी की कढ़ाई में 45 हजार, मन्दसौर के स्लेट पेंसिल उद्योग मे 1 हजार व मेघालय की काँच की खान में 28 हजार बाल श्रमिक काम करते है। एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार भारतवर्ष में 132 जिले ऐसे है। जिनमें खतरनाक उद्योगों में बाल श्रमिक कार्यरत है। ये 13 राज्यों मे अवस्थित है। ये राज्य है बिहार,आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, जम्मू कश्मीर, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र उड़ीसा रास्थान, तमिलानाडु उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल व दिल्ली। इन राज्यों में ही लगभग 90 प्रतिशत ऐसे बाल श्रमिक कार्यरत है।

बाल श्रम का अभिप्राय

बाल श्रम को दो प्रकार से परिभाषित किया गया है–प्रथम, वैधानिक दृष्टि से तथा द्वितीय, अवैधानिक दृष्टि से। वैधानिक दृष्टि से बाल श्रम में उन बाल श्रमिकों कों सम्मिलित किया जाता है जो न्युनतम आयु के अवयस्क बच्चे होते है। कारखाना अधिनियम् 1948 के अनुसार 14 से 15 वर्ष के श्रमिकों को बालक तथा 15 से 18 वर्ष क व्यक्तियों कों किशोर माना गया है। 14 वर्ष से कम व्यक्तियों की श्रम के क्षेत्र मे नियुक्तियाँ निषेध की जाने के कारण इस

आयु के व्यक्तियों को बाल श्रमिक नही कहा जा सकता। खदानों में 15 से 16 वर्ष के श्रमिकों को बाल श्रमिक कहा जाता है। बागानों में 12 से 15 व्यक्तियों को बाल श्रमिक कहा जाता है।

बाल श्रम(निषेध और नियमन) अधिनियम् 1986 के अनुसार एक बच्चे की परिभाषा इन शब्दों दी गई है–''वह जो 14 साल की उम्र से कम का हो,'' इस प्रकार किसी उद्योग, खान, कारखाने आदि में 14 वर्ष से कम आयु के मानसिक व शारीरिक श्रम करने वाले बच्चे बाल श्रमिक कहलाते है। चूँकि 5 वर्ष के कम आयु के बच्चे इतने बड़े नहीं होते है कि भुगतान या मुनाफे के लिए लाभदायक आर्थिक गतिविधियों में लग सकें, इसलिए बाल श्रमिक 5–14 वर्ष आयु वर्ग के अन्तर्गत आत है।संवैधानिक दृष्टि से धारा 24(क) के अनुसार, किसी भी 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे को किसी कारखाने या किसी जौखिमक कार्य में नही लगाया जा सकता है।

अवैधानिक दृष्टि से ऐसे बच्चे जो असंगठित उद्योगों में काम करते हैं अथवा खेतीहार कामों में लगे होते है, वे भी बाल श्रमिक होते है। कारखानों, खदानों तथा बागानों आदि में अधिक उम्र दिखाकर भर्ती कर लिए गए बच्चे भी बाल श्रमिक की श्रेणी में ही आते है।

बाल श्रमिक शब्द की व्याख्या सामान्यतया दो प्रकार से की जा सकती है–(1) आर्थिक व्यवसाय के रूप मे तथा (2) सामाजिक अभिशाप के रूप में। प्रथम सन्दर्भ में बाल श्रमिक आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद रोजगार को प्रकट करता है, जिससे परिवार की आय में वृद्धि होती है। भारतवर्ष अन्य देशों की तुलना में निर्धन देश है, जहाँ प्रति व्यक्ति व परिवार औसत आय अत्यन्त कम है। परिणामस्वरूप बालकों को भी, जब उनकी आयु खेलने पढने की होती है, कार्य पर लगाकर आय बढाने का प्रयास किया जाता है। भारत में बच्चों को मजदूरी करने के लिए जो कारण मुख्य रूप से उत्तरदायी है, उनमें से निर्धनता, अशिक्षा, खेती की निम्न दशा, कुटीर उद्योगों का पतन, उद्योगपतियों की लाभकारी एवं मुनाफाखोरी की मनोवृत्ति तथा अधिनियमों एवं नियमों के पालन में शिथिलता आदि प्रमुख है।

द्वितीय सन्दर्भ में बाल श्रमिक उन बुराइयों अथवा शोषणों की अभिव्यक्ति है जोकि बालकों को रोजगार में लगाने के कारण पनपते है। आधुनिक समय में बाल श्रम शब्द सामाजिक बुराइयों

को प्रकट करता है। जहाँ तक सामाजिक बुराई या दोष का सम्बन्ध है, वह प्रत्यक्ष रूप से बालक के व्यक्तित्व विकास से सम्बन्धित है।

भारतवर्ष में बाल श्रम की अधिकता का प्रमुख कारण है भारतीय परिवारों में व्याप्त गरीबी की समस्या जिसके कारण बच्चों के माता–पिता अपने पारिवारिक जीवन को चलाने के लिए उन्हें कार्य पर लगाने के लिए विवश हो जाता है। बालकों के कार्य करने से उनका शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास रूक जाता है। सामान्यतः बाल श्रमिकों को नाश्ते व भोजन के साथ साथ 5 रूपये से लेकर 10 रूपये तक प्रतिदिन मजदूरी मिलती है जो उनके अभिभावक या संरक्षक प्राप्त करते है।

वैवाहिक स्थिति

विवाह एक सामाजिक–सांस्कृतिक संस्था है। यह वह आधार स्तम्भ है जिसके द्वारा मानव का अस्तित्व बना हुआ है। समाज की निरन्मरता का आधार सन्तान है तथा सन्तान की उत्पत्ति जन्म पर आधारित होती है। जन्म के लिए स्त्रियों व पुरूषों का लैंगिक (यौन) सम्बन्ध आवश्यक है। समाज द्वारा लैंगिक सम्बन्धों को कानून एवं प्रथाओं द्वारा नियमित करने के उद्देश्य से ही विवाह नामक संस्था का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रत्येक समाज के सांस्कृतिक तथा सामाजिक नियमों का प्रभाव विवाह पर पड़ता है जिसके कारण इसके उद्देश्यों में भिन्नता होती है। उदाहरण के लिए –हिन्दू का प्रमुख उद्देश्य धर्म की पूर्ति, सन्तानोत्पादन एवं यौन आकांक्षा की पूर्ति है। हिन्दू विवाह में धर्म को प्रधानता दी गई है, यौन तृप्ति को प्रधानता नहीं दी गई है। परन्तु मॉर्गन, मैलिनोव्स्की आदि विचारकों ने विवाह को प्रमुख रूप से यौन सन्तुष्टि का आधार माना है।

टॉयलर (1993) के अनुसार, ''धर्म आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास है।'' टॉयलर ने अपनी परिभाषा में धर्म को प्रत्यक्ष रूप से आध्यात्मिक विश्वास के साथ सम्बन्धित किया है। जब मनुष्य अपनी शक्ति और विवेक से किसी घटना के कारण को समझने में असमर्थ हो जाता है

तो वह भय और श्रद्धा के फलस्वरूप किसी–न–किसी अलौकिक शक्ति पर विश्वास करने लगता है। यही धर्म है।

मैलिनोव्सकी (1948) के अनुसार, ''धर्म क्रिया की एक विधि है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी। धर्म एक समाजशास्त्रीय तथ्य होने के साथ ही एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।'' मैलिनोव्स्की ने धर्म को विश्वासों पर आधारित एक व्यवस्था माना है जिसे पुरा करने के लिए अनेक प्रक्रियाओं से होकर गूजरना पड़ता है। साथ ही, मैलिनोव्सकी ने धर्म को एक ऐसा तथ्य माना है जो सम्पूर्ण समाज को सामूहिक रूप से प्रभावित करने के साथ–साथ व्यक्तिगत रूप से समाज के प्रत्येक सदस्य को भी प्रभावित करता है।

मजूमदार एवं मदन (1970) के अनुसार, ''धर्म किसी अलौकिक और अतीन्द्रिय शक्ति के भय का एक मानवीय प्रत्युत्तर है। यह व्यवहार की अभिव्यक्ति अथवा परिस्थितियों से किए गए अनुकूलन का वह रूप है जो अलौकिक शक्ति की धारणा से प्रभावित होता है।'' मजूमदार एवं मदन के अनुसार जब मनुष्य अतीन्द्रिय (परामानवीय) शक्ति से भयभीत हो जाता है तो वह धर्म के रूप में अपने भय को अभिव्यक्त करता है। इस तरह से, धर्म असामान्य परिस्थितियों को सामान्य बनाने के लिए किया गया मानवीय प्रयास है जो अतिमानवीय धारणा पर विश्वास करके ही सफल हो सकता है।

उपसंहार

भारतीय समाज, कल्याणकारी राज्य के रूप में नियमित तथा निर्देशित है। अतः बाल–कल्याण के उत्तरदायित्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। भारतीय संविधान की धारा 24 (क) के अनुसार 14 वर्ष से नीचे की आयु के किसी भी बालक को किसी भी बालक को किसी भी कारखाने या खान या किसी अन्य जोखिमयुक्त कार्य में नहीं लगाया जा सकता है। ऐसे बच्चों को 'बाल श्रमिक' की संज्ञा दी गई है जिसे निषिद्ध तथा दण्डनीय अपराध माना गया है। भारतीय संविधान की धारा 39 (1) में बाल श्रमिकों को शोषण तथा उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने की बात कही गई है, तो धारा 45 में स्पष्ट उल्लिखित है कि जब तक बालक 14 वर्ष की

आयु पूरी नहीं कर लेता तब तक राज्य निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा। परन्तु बड़े खेद की बात है कि उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भी हमारे देश के छोटे–छोटे बच्चे घरों, ढ़ाबों, खानों, मोटरवाहन वर्कशापों, मकान निर्माण, कृषि क्षेत्र, कल कारखानों में जोखिम भरे कार्य करते है।

आर्थिक दृष्टि से भारतीय समाज अत्याधिक विषमतायुक्त है। आर्थिक विषमता के कारण बेरोजगारी तथा आर्थिक तंगी के शिकार परिवार अपने बच्चों से उदर पूर्ति के लिए मजदूरी करवाने के लिए विवश होते है। यह श्रम कई प्रकार के होते है यथा– होटलों, जलपान गृहों, घरेलू नौकर, कल–कारखानों में काम करने वाले, मलिन बस्तियों, प्रदूषित कूड़े–कचरों से उपयोगी वस्तुएँ बीनने वाले आदि। जो रोजगार की खतरनाक परिस्थितियों का जोखिम उठाकर कई घण्टे काम करने के बदले अल्प मजदूरी पाते है, वे इतने दुर्भाग्यशाली होते है कि वे नहीं जान पाते कि बचपन क्या होता है ? ऐसे बच्चे श्रम के दुष्प्रभाव से विभिन्न बीमारियों यथा– खून की कमी हो जाना, आँखो से कम दिखाई देना, क्षय रोग आदि असाध्य बीमारियों के अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक बुराईयों, जैसे जुआ, धूमपान, बुरी संगति, यौन व्यभिचार, मद्यपान, चोरी, तस्करी, आवारागर्दी आदि में अशिक्षा व अज्ञानता के कारण फँस जाते है।

इस प्रकार, निर्विवाद स्वीकार्य तथ्य यह है कि बाल श्रम किसी भी समाज एवं राष्ट्र के विकास में बाधक ही नही, अपितु नैतिक दृष्टि से समाज के लिए एक भयंकर सामाजिक बुराई है, जिसका समाधान आवश्यक ही नही, बल्कि अनिवार्य है क्योंकि बाल श्रम के कारण अनेक प्रतिभावान बालकों की प्रतिभाएँ अवरूद्ध हो जाती है, व्यक्तित्व का विकास नही हो पाता, वे राष्ट्र के विकास की मुख्य धारा में अपना योगदान नहीं दे पाते और राष्ट्र भी उनके योगदान से वंचित रह जाता है।

अतः इस अध्ययन का व्यावहारिक महत्तव यह है कि इसके आधार पर हम नगरीय परिवेश में बाल श्रमिकों की समस्याओं से अवगत हो गए है। साथ ही, हमें यह भी ज्ञात हो गया है कि वे कौन–सी ऐसी बाध्यताएँ हैं जिनके कारण अवयस्क बालकों को श्रम करना पड़ता है और इस अनुचित श्रम से उन के जीवन विन्यास में कौन–कौन सी बाधाएँ उपस्थित

होती हैं तथा उन का निवारण किस प्रकार किया जा सकता है। यद्यपि बाल श्रम की समस्या के समाधान के लिए विभिन्न विकास कार्यक्रम तथा बाल श्रमिकों (निषेध तथा नियमन) अधिनियम, 1986 पारित किया गया, किन्तु शोषणकर्त्ताओं ने कानून के प्रावधानों की खुलकर अवहेलना की, जिससे परिणाम ''वही ढाक के तीन पात'' रहा है। इस अध्ययन के आधार पर ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बाल श्रमिको को इस अनुचित श्रम से बचाने हेतु गम्भीरता से प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। साथ ही, उन कारणों को भी दूर करने का प्रयास किए जाने की आवश्यकता है जो इस बुराई के लिए उत्तरदायी है। इस समस्या के समाधान हेतु अनेक लाभकारी सुझाव भी प्रस्तुत किए गए है। वस्तुतः अवस्यक बालक ही तो किसी भी राष्ट्र की भावी उन्नति के मूलाधार होते है। अतः उस मूलाधार की दुर्बलता के निवारण में भी यह सुझाव सहायक सिद्ध होंगे, ऐसी शोधार्थिनी को पूर्ण आशा है।

ISSN: 2320-3714
September 2019

संदर्भ

- एलिजाबेथ डी. निबन , फ्रेडरीच हर्बलर , इटिब्रेटो लोइजा (2005) ''चाइल्ड लेबर एजुकेशन एण्ड द प्रिसिपल ऑफ नॉन डिस्क्रिमेशन'' डिविजन एण्ड प्लानिंग कमिशन,यूनिसेफ

- इंटरनेशनल लेजर ऑर्गेनाइजेशन, (2012)''व्हाट इज चाइल्ड लेबर?''

- ब्राइट फ्यूचर बेकॉन चिल्ड्रन फ्रॉम पुअर हॉम्स, थेक्स टू आर. टी. ई.'' द वीकेन्ड लीडर पॉइनीअर पॉजिटिव जर्नलिज्म वाल्यूम 7

- आई.एल.ओ. ग्लोबल रिपोर्ट ऑन चाइल्ड लेबर (2010) आई.एल.ओ. मिनिमय कन्वेशन 1973, न. 138

- आई. एल. ओ. (1979), चाइल्ड लेबर, ए रिपोर्ट ऑफ डायरेक्टर जनरल, जनेवा इन द एम्युनिस्ट मैनि फेस्टो, पार्ट 4 पोलेटिरियस एण्ड कम्युनिस्ट एण्ड केपिटल , वाल्युम 1, पार्ट 3

- कल्पना निरंजन (2015)''बुदेलखंड प्रखंड में बाल श्रम एक अभिशाप '' प्रकाशित शोध

- तलेसरा, हेमलता, पंचोली, नलिनी (2003) ''मानवाधिकार व शिक्षा'' अंकुर प्रकाशन, उदयपुर।

- ''द एण्ड ऑफ चाइल्ड लेबर , ग्लोबल डिवोर्ट अंडर द फॉलोअप टू द आई.एल.ओ डिलियरेशन औन फडामेटल प्रिसिपल एण्ड रिगिड़ एट वर्कस'' आई.एल.ओ. जेनेवा (2006)

- लुईस हैकिन "द यूनाईटेड नेशन्स एण्ड ह्यूमन राईट्स '' इण्टरनेशनल ऑर्गेनाइजेशन, वाल्यूम 21, पृ. 504